

[2024]1 एस.सी.आर. 281: 2024 आईएनएससी 17

एस. वी. समुद्रम

बनाम

कर्नाटक राज्य और अन्य

(सिविल अपील संख्या 8067/2019)

04 जनवरी 2024

[अभय एस. ओका और संजय करोल, न्यायमूर्तिगण]

विचारणीय मुद्दा

सिविल न्यायाधीश ने मध्यस्थ द्वारा पारित किए गए अवार्ड को संशोधित किया, जिसमें दी गई राशि को घटाकर उस पर ब्याज भी दिया गया, जो, रूपए 14,68,239/- @18% से निविदा राशि का केवल 25% जो रूपए 3,71,564/- के बराबर है और उस पर ब्याज प्रतिशत घटाकर 9% कर दिया गया। क्या उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए सिविल न्यायाधीश द्वारा किए गए मध्यस्थता निर्णय का संशोधन कानून के भीतर उचित था।

शीर्ष टिप्पणियाँ

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 द्वारा पारित अवार्ड को सिविल न्यायाधीश द्वारा संशोधित किया गया था और प्रतिवादियों को मध्यस्थता @9% ब्याज की लागत के रूप में रूपए 10,000/- के साथ रूपए 3,71,564 (निविदा राशि का 25%) का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था-औचित्य:

अभिनिर्धारित: यह तय किया जाता है कि किसी भी न्यायालय के पास धारा 34 के तहत पारित किए गए मध्यस्थ निर्णय को संशोधित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा, जिसे सर्वोत्तम रूप से निर्दिष्ट धारा 14 के आधारों के साथ टकराव में दिया गया है। विधि में पूर्णतः अस्थिर होगा- इसके अलावा, मध्यस्थ का दृष्टिकोण, सामान्यतः पक्षकारों के लिए

बाध्यकारी माना जाता है जब तक कि उसे कतिपय विनिर्दिष्ट आधारों पर अपास्त नहीं किया जाता है- तत्काल मामले में, दिनांक 18.02.2003 को पारित निर्णय मध्यस्थ और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 के आधार पर धारा 34 में लाए गए संशोधन से पूर्व था- संशोधन अधिनियम से पूर्व, न्यायालय के लिए यह निर्णय की जांच करने के लिए खुला था कि क्या यह (क) भारत की लोक नीति के साथ संघर्ष में था; (ख) धोखाधड़ी से प्रेरित या प्रभावित; (ग) भ्रष्टाचार; और (घ) अधिनियम की धारा 75 और धारा 81 के उपबंधों का कोई उल्लंघन- दी गई स्थिति में, केवल एक ही उपबंध जिसके अधीन निर्णय पर हमला किया जा सकता था, उसे भारत की सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष में रखा गया था- भारत के आदेश के अनुसार और न्यायाधीश के आदेश के पाठ के अनुसार नहीं, जो कि कानून के अधीन उपबंधों को दर्शाता है। क्या धारा 34 के तहत किन आधार(ओं) पर न्यायालय को हस्तक्षेप करने का पर्याप्त कारण मिला- वास्तव में, इसके बिल्कुल विपरीत, न्यायालय ने मामले की पुनः सराहना की, और साक्ष्य के अपने दृष्टिकोण पर, आदेश को संशोधित किया- अभिलिखित कारणों में से कोई भी भारत की सार्वजनिक नीति के विपरीत होने का संकेत नहीं देता है, जो न्यायालय को अवार्ड के गुणों को देखने में सक्षम बनाता है- मध्यस्थ द्वारा पारित अवार्ड जिसमें उसने न केवल रिकॉर्ड पर सामग्री का उल्लेख किया है और उन पर पूरी तरह से विचार किया है, बल्कि, मन के उचित आवेदन के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए दिए गए कारणों को भी, दावेदार अपीलकर्ता द्वारा निर्धारित दावे को अस्वीकार, स्वीकार या कम करते हुए- मध्यस्थ द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक प्रशंसनीय दृष्टिकोण है और न्यायालय द्वारा अपने स्वयं के लिए प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है- इस प्रकार, मध्यस्थ न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थ अवार्ड का संशोधन, सिविल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित और विचार किया जाना चाहिए, और जांच को दरकिनार नहीं किया जाना चाहिए। [अनुच्छेद 28,29,30,31,33]

मध्यस्थ और सुलह अधिनियम, 1996- धारा 37- उच्च न्यायालय ने सिविल न्यायाधीश को धारा द्वारा मध्यस्थ निर्णय के संशोधन को बरकरार रखा। अधिनियम का 37- औचित्य:

अभिनिर्धारित: उच्च न्यायालय का एकल न्यायाधीश, सिविल न्यायाधीश के समान धारा 34, अधिनियम के धारा 37 के रूपरेखों के साथ खुद को संबंधित नहीं प्रतीत होता है- न्यायालय धारा 37 के पास केवल तीन विकल्प थे:- (क) मध्यस्थ के निर्णय की पुष्टि करना; (ख) अवार्ड को धारा 34 के तहत संशोधित के रूप में अलग करना; और (ग)

आवेदन(ओं) को धारा 34 और 37 के तहत अस्वीकार करना- एकल न्यायाधीश ने कुछ दावों (विशेष रूप से दावे 3 और 7) के संबंध में मध्यस्थ द्वारा अपनाए गए तर्क की जांच की है और यह अभिनिर्धारित किया है कि लागत में वृद्धि के लिए दावे को अनुमति देना संतोषजनक सामग्री के बिना रिकॉर्ड पर रखा गया था और "विकृत और सार्वजनिक नीति के विपरीत" है- हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधीश की ओर से ऐसी धारणा इसके लिए कारण बताए बिना है- इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एकल न्यायाधीश के समक्ष साक्ष्य क्या था, इस पर चर्चा नहीं की गई है- दोनों दावों के अच्छी तरह से निर्धारित मापदंडों और रूपरेखों के अनुपालन के अभाव में और अधिनियम की धारा 34 और 37, आक्षेपित निर्णयों को अलग रखा जाता है- परिणामस्वरूप, मध्यस्थ का दिनांक 18.02.2003 का निर्णय बहाल किया जाता है। [अनुच्छेद 39,42,43,47]

उद्धृत निर्णयजन्य विधि

भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण बनाम एम. हकीन और एक अन्य (2021) 9 एससीसी 1; दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड बनाम नेविगेंट टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड [2021] 1 एससीआर 1135: (2021) 7 एससीसी 657; एसोसिएट [बिल्डर्स बनाम डीडीए [2014] 13 एससीआर 895: (2015) 3 एससीसी 49; सांगयोंग इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (2019) 15 एससीसी 131: [2019] 7 एससीआर 522; एमएमटीसी लिमिटेड बनाम वेदांता लिमिटेड [2019] 3 एससीआर 1023: (2019) 4 एससीसी 163; यूएचएल पावर कंपनी लिमिटेड बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [2022] 1 एससीआर 1: (2022) 4 एससीसी 116; हैदर कंसल्टिंग (यूके) लिमिटेड बनाम ओडिशा राज्य [2014] 14 एससीआर 1029: (2015) 2 एससीसी 189-भरोसा किया गया।

लार्सन एयर कंडीशनिंग एंड रिफ्रिजरेशन कंपनी बनाम भारत संघ और अन्य [2023] 11 एससीआर 86:2023 एससीसी लाइन 982 पर; डायना टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम क्रॉम्पटन ग्रीव्स लिमिटेड [2019] 15 एससीआर 295: (2019) 20 एससीसी 1; कॉकण रेलवे कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम चिनाब ब्रिज प्रोजेक्ट [2023] 11 एससीआर 215: (2023) 9 एससीसी 85; दिल्ली एयरपोर्ट मेट्रो एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (2022) 1 एससीसी 131; डीडीए बनाम आर. एस. शर्मा [2008] 12 एससीआर 785: (2008) 13 एससीसी 80; इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम श्री

गणेश पेट्रोलियम (2022) 4 एससीसी 463; जे. जी. इंजीनियर्स (पी) लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया [2011] 8 एससीआर 486: (2011) 5 एससीसी 758- संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 [मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 से पहले]।

प्रमुख शब्दों की सूची

मध्यस्थता; न्यायालय द्वारा निर्णय की जांच; सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष; मध्यस्थता निर्णय में संशोधन।

मामले की उत्पत्ति

सिविल अपीलीय न्यायपीठ से उद्भूत मामला: सिविल अपील संख्या 8067/2019। 2010 के एमएफए संख्या 24507 में धारवाड़ में कर्नाटक सर्किट बेंच के उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 07.02.2017 से।

अधिवक्तागण

अनिल कौशिक, अभिषेक मिश्रा, श्रीमती शशि शर्मा, रजत राणा, सुश्री अंजू कौशिक, सुश्री अरुणिमाद्विवेदी, अधिवक्ता। अपीलकर्ता के लिए।

अविनाश सिंघवी, ए. ए. जी., वी. एन. रघुपति, मनेन्द्र पाल गुप्ता, विवेक कुमार सिंह, अधिवक्ता। प्रतिवादियों के लिए।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय/आदेश

आदेश

संजय करोल न्यायमूर्ति

1. इस सिविल अपील में विचार के लिए उद्भूत मुद्दा, जो 7 फरवरी, 2017 को कर्नाटक उच्च न्यायालय (धारवाड़ पीठ) द्वारा एमएफए संख्या मध्यस्थ और सुलह अधिनियम, 1996

की धारा 37(1) के अधीन 2010 (एए) का 24507 यह है कि क्या उच्च न्यायालय सिविल विविध मामले में वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, सिरसी द्वारा पारित मध्यस्थ और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन 22 अप्रैल, 2010 के आदेश की पुष्टि करने में न्यायोचित था सिविल विविध वाद संख्या 08/2003, जिसके द्वारा विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित अवार्ड को संशोधित किया गया था और प्रदान की गई राशि को कम कर दिया गया था।

तथ्य

2. जैसा कि निम्नलिखित न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों से सामने आया है, तथ्य हैं:-

2.1 श्री एस.वी. समुद्रम² एक पंजीकृत श्रेणी II सिविल इंजीनियरिंग ठेकेदार हैं और उन्होंने कर्नाटक राज्य लोक निर्माण विभाग से सिरसी में मुख्य वन संरक्षक के कार्यालय और निवास के निर्माण के लिए एक अनुबंध प्राप्त किया था 14.86 लाख रुपए का।
2.2 उक्त अनुबंध 29 जनवरी, 1990 को पक्षों के बीच इस शर्त के साथ किया गया था कि निर्माण स्थल का कब्जा 8 मार्च, 1990 को दावेदार अपीलकर्ता को सौंप दिया जाएगा और आवंटित कार्य 6 मई 1992 यानी मानसून के मौसम को छोड़कर समझौते की तारीख से 18 महीने पहले पूरा किया जाना था।

2.3 यह निर्विवाद है कि आवंटित कार्य दावेदार- अपीलकर्ता द्वारा पूरा नहीं किया जा सका, जिसके लिए, उसने राज्य के अधिकारियों को जिम्मेदार ठहराया क्योंकि उन्होंने कथित रूप से प्रत्येक स्तर पर बार-बार और स्थल के परिवर्तन और ऐसे निर्माण के लिए सामग्री के वितरण के कारण होने वाली देरी के कारण भी अपने बिलों का भुगतान नहीं किया।

2.4 विवादों के निपटान और निर्णय के लिए, अनुबंध के पक्षों ने मध्यस्थता तंत्र का सहारा लिया और परिणामस्वरूप, 31 मई, 2002 की मध्यस्थता याचिका में, श्री एस. के. अंगदी, मुख्य अभियंता (सेवानिवृत्त)। 30 जुलाई, 2002 को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया।

विद्वान मध्यस्थ के समक्ष प्रक्रियाएँ

3. इसके अनुसरण में, दावेदार-अपीलकर्ता ने यहां विद्वत मध्यस्थ के समक्ष कुल रूपए 18,06,439/- का अपना दावा दाखिल किया, साथ ही उस पर देय ब्याज @18% प्रति वर्ष, 9 मार्च, 1994 से देय भुगतान की तारीख तक।

4. दोनों पक्षों को सुनने के बाद, पहचाने गए तीन प्राथमिक मुद्दे थे:-

(क) अनुबंध के निष्पादन के लिए स्थल को सौंपने में अत्यधिक देरी;

(ख) काम करने वाले कार्यशील रेखाचित्र और डिजाइन की आपूर्ति नहीं; और

(ग) सामग्री की आपूर्ति में देरी।

5. इनमें से प्रत्येक मुद्दे के लिए, विद्वान मध्यस्थ ने अपने समक्ष साक्ष्य की जांच करने पर प्रतिवादियों को उत्तरदायी पाया। अपनाए गए तर्क का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

क्रम संख्या	विचारणीय बिंदु	तर्क
1	अनुबंध के पूरे कार्य निष्पादन को सौंपने में देरी।	<p>1) पूरे स्थल को समय पर न संभालना एक कारण है जिसके परिणामस्वरूप 18 महीने के निर्धारित समय के भीतर काम पूरा नहीं हुआ।</p> <p>समूचे स्थल का कब्जा सौंपने में 9 महीने की देरी होती है।</p> <p>कार्यालय भवन का कब्जा 07.03.1990 को सौंपा गया</p>

		<p>था। आवास भवन का कब्जा दिसंबर 1990 में सौंप दिया गया था।</p>
2	कार्यशील चित्रों, डिजाइनों आदि की आपूर्ति में देरी।	<p>1) आधार के लिए विशिष्ट उत्खनन योजना को दर्शाते हुए, स्तंभों का विवरण सितंबर 1990 के दौरान दावेदार को जारी किया गया था, जिसमें 6 महीने की देरी थी।</p> <p>2) आर28 की ड्राइंग की आपूर्ति अप्रैल 1991 तक नहीं बल्कि 1 जुलाई 1991 को की गई थी। 3 महीने की देरी हुई।</p> <p>3) वन संरक्षक के कार्यालय की पहली मंजिल के स्लैब का विवरण दिखाने वाला ड्राइंग 13.10.1992 तक तैयार किया गया था, लेकिन 01.11.1992 को पर आपूर्ति की गई थी जो</p>

		<p>06.05.1992 को अनुबंध की समाप्ति के बाद की तिथि थी।</p> <p>4) क्वार्टरों के लिंटेल् बीम, रूफ बीम, स्लैब आदि के विवरण के साथ ड्राइंग 05.10.1991 तक तैयार की गई थी और 15.10.1991 को आपूर्ति की गई थी, लेकिन निर्माण के लिए बदली गई स्थलदावेदार को 14.02.1991 को सौंप दी गई थी।</p>
3	सामग्री की आपूर्ति में देरी के मामले में	दस्तावेजी साक्ष्य के अध्ययन पर, उन्होंने पाया कि कार्य के लिए आवश्यक पर्याप्त इस्पात और सीमेंट की आपूर्ति प्रतिवादी द्वारा समय पर नहीं की गई थी।

6. इस प्रकार, कुल 11 दावों के विरुद्ध, 9 दावों के विरुद्ध राशि प्रदान की गई। अवार्ड का सारांश इस प्रकार निकाला गया है:-

पंच निर्णय का सारांश

क्रम संख्या	दावा का विवरण	दावा की राशि	पंचाट निर्णय की राशि
1	हानि और आकस्मिक खर्चों का भुगतान	रुपए 83, 300/-	रुपए 83, 300/-
2	रुपये के लाभ के नुकसान पर भुगतान।	रुपए 83, 300/-	रुपए 83, 300/-
3	निष्क्रिय श्रम पर रुपये का भुगतान।	रुपए 1,77,300/-	रुपए 1,77,300/-
4	निष्क्रिय मशीनरी पर भुगतान	रुपए 98,500/-	अस्वीकृत
5	कार्य स्थल पर पानी की खरीद पर अतिरिक्त व्यय का भुगतान	रुपए 24,000/-	अस्वीकृत
6	पहले किए गए शटर, सेंट्रिंग, फैब्रिकेशन पर	रुपए 15,800/-	रुपए 15,800/-

	अतिरिक्त खर्चों का भुगतान बाद में समाप्त कर दिया गया।		
7	मूल रूप से निर्धारित समय से आगे निष्पादित कार्य पर संशोधित दरों पर भुगतान रूपए	रुपए 11,33,000/-	रुपए 9,67,300/-
8	कार्य बिलों में बरामद फ्रीक दरों के रिफंड पर भुगतान	रुपए 33,469/-	रुपए 33,469/-
9	प्रतिभूति जमा के रिफंड पर भुगतान	रुपए 57,770/-	रुपए 57,770/-
10	ब्याज, पूर्व मध्यस्थता, वादकालीन और भविष्य के ब्याज का भुगतान	@18% प्रति वर्ष दावा संख्या 1 से 9 तक 09.03.94 से भुगतान की तारीख तक ब्याज का भुगतान	@18% प्रति वर्ष 09.3.94 से भुगतान की तारीख तक सभी देय राशियों पर
11	मध्यस्थता की लागत	रुपए 1,00,000/-	रुपए 50,000/-

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत प्रक्रियाएं

7. उसी पर जोर देते हुए, प्रतिवादी मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 अधिनियम की धारा 34 के तहत एक याचिका दायर की, जिसमें विद्वत सिविल न्यायाधीश, सिरसी ने अपने विचार के लिए 2 बिंदु पाए, जिन्हें उन्होंने इस रूप में दर्ज किया:-

"1. क्या याचिकाकर्ता ने उचित आधार बनाए हैं कि मध्यस्थ द्वारा पारित निर्णय उचित तर्कों द्वारा समर्थित नहीं है और यह मनमाना प्रकृति में है और इसे अलग किया जा सकता है?"

2. कौन सा आदेश?"

8. विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट निर्णय को संशोधित किया गया था और प्रतिवादियों को मध्यस्थता @9% ब्याज की लागत के रूप में रूपए 10,000/- के साथ रूपए 3,71,564 (निविदा राशि का 25%) का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। इस तरह के संशोधन के लिए दिए गए कारण, जैसा कि वे निर्णय के अवलोकन पर सामने आते हैं:-

8.1 आवासीय क्वार्टरों की स्थल में परिवर्तन पहले की स्थल से मुश्किल से 200 मीटर की दूरी पर था। अगर जगह में बदलाव भी होता तो भी कार्यालय भवन के निर्माण का काम शुरू हो सकता था क्योंकि उस संबंध में कोई बदलाव नहीं हुआ था, लेकिन उन्होंने नींव रखने के लिए खुदाई भी शुरू नहीं की थी। इसलिए, मजदूरों को भुगतान और निर्माण के लिए एकत्र की गई सामग्री के नुकसान का सवाल नहीं उठता है और दावेदार-अपीलकर्ता को कथित रूप से हुए नुकसान "केवल उनकी कल्पना पर" थे।

8.2 मशीनरी के निष्क्रिय होने पर, यह नहीं बताया गया था कि वह कितने दिनों के लिए निष्क्रिय थी। यह "अपनी सनक और कल्पनाओं के लिए है जो याचिकाकर्ता दावा कर रहा है जैसे कि उसे नुकसान हुआ है"।

8.3 जहां तक जल सुविधाओं के लिए दावा है, प्रतिवादियों का यह तर्क स्वीकार कर लिया गया है कि समझौते के अनुसार, दावेदार-अपीलकर्ता को उसी की देखभाल करनी थी और इसलिए, प्रतिवादी इसके लिए उत्तरदायी नहीं होंगे।

8.4 चूंकि यह दावेदार-अपीलकर्ता है जिसने समय पर निर्माण पूरा नहीं किया है, इसलिए वह वर्ष 1989-90 की दरों के लिए दावा नहीं कर सकता है और उस पर ब्याज का दावा नहीं कर सकता है।

8.5 दावेदार अपीलकर्ता के इस तर्क का समर्थन करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं कि सामग्री की आपूर्ति में विलम्ब हुआ था। किस सामग्री की आपूर्ति की जा रही थी, क्या इसमें देरी हुई थी, यह स्पष्ट नहीं है। इसके विपरीत आरोप यह है कि सभी बिलों को मंजूरी देने के बाद भी दावेदार-अपीलकर्ता ने काम में तेजी नहीं दिखाई। सारा पत्राचार केवल जुर्माने के भुगतान से बचने के लिए होता है।

8.6 एकमात्र विलम्ब आवासीय गृह की स्थल को सौंपने का है। 7 मार्च, 1990 को भी ऐसा ही किया गया था। दावेदार अपीलकर्ता ने यह नहीं बताया कि अगस्त 1990 तक कब्जा सौंपने के बावजूद, नींव के लिए कोई खुदाई कार्य शुरू नहीं हुआ था।

8.7 डिजाइन में परिवर्तन के लिए, यह देखा गया है कि चूंकि परिवर्तन मामूली थे, इसलिए इसे किसी अतिरिक्त भुगतान की आवश्यकता नहीं है। उसी का भुगतान केवल तभी किया जाएगा जब परिवर्तन के अनुसार काम का दोहराव/पहले के निर्माण को हटाया गया हो।

8.8 रुपए 50,000/- पर अधिनिर्णीत मध्यस्थ की लागत "अत्यधिक दर पर" है। भले ही विभाग की ओर से देरी और अड़चनों के तर्क को स्वीकार कर लिया जाए, "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि विभाग हमेशा सही रास्ते पर है" और इसकी सीमा को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

8.9 यह भी देखा गया कि विद्वत् मध्यस्थ के लिए ऐसी राशि प्रदान करने का औचित्य था जो निविदा की राशि के लगभग बराबर है, वह भी ब्याज की ऐसी उच्च दर पर जो सरकारी खजाने पर अनुचित बोझ का कारण बनती है।

8.10 शेष गंभीर टिप्पणियों पर बाद में विचार किया गया।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत प्रक्रियाएं

9. उच्च न्यायालय ने, हमारे समक्ष चुनौती के तहत अपने निर्णय को देखते हुए, मध्यस्थता निर्णय के संशोधन की पुष्टि की है जैसा कि विद्वान सिविल न्यायाधीश, सिरसी द्वारा किया गया है, जिसमें दावेदार-अपीलकर्ता की ओर से आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

9.1 यह देखा गया है कि प्राथमिक विवाद दावा संख्या 7 जो कार्य की बढ़ी हुई लागत की संशोधित दरों का अनुदान है। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि मध्यस्थ का यह दृष्टिकोण कि अनुबंध के उल्लंघन के लिए विभाग पूरी तरह से जिम्मेदार है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्थल में स्थानांतरण केवल आवासीय क्वार्टरों के संबंध में था न कि कार्यालय परिसर के लिए।

9.2 लागत का अनुमान वर्ष 1989-90 से संबंधित निविदा अधिसूचना पर आधारित है। वर्ष 1992 में लागत में सौ प्रतिशत की वृद्धि की उम्मीद नहीं की जा सकती थी जैसा कि दावा किया गया था। अभिलेख पर यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं दिखाया गया है कि किस बात ने दावेदार अपीलकर्ता को कार्यालय भवन का काम शुरू करने से रोक दिया था। यह इस आधार पर है कि दावेदार अपीलकर्ता की वृद्धि के दावे को विद्वत मध्यस्थ द्वारा अनुमत किया जाए, जिसे विकृत और सार्वजनिक नीति के विपरीत कहा गया है।

9.3 विलंब के निष्कर्ष केवल विभाग के कारण होने के कारण स्वीकार नहीं किए जा सकते हैं और इसके संबंध में नुकसान की मात्रा अनुचित है। "यह अधिनियम की धारा 34 के लिए उत्तरदायी मध्यस्थ की ओर से कदाचार का मामला होगा"

9.4 दावा संख्या 3 रुपए 1,77,300/- तक के बेकार श्रम की अनुमति के संबंध में "न्यायालय की अंतरात्मा को झटका"। ऐसा इसलिए है क्योंकि श्रम के बेकार रहने का कोई आधार नहीं था।

9.5 रुपए 50,000/- का निर्णय मध्यस्थ की लागत अत्यधिक है। यह भी देखा गया कि लागत में वृद्धि "धारणाओं और अनुमानों" पर नहीं दी जा सकती है और इसलिए, दावों को प्रदान करना, वह भी निविदा राशि के लगभग बराबर, बनाए नहीं रखा जा सकता है।

10. विद्वान सिविल न्यायाधीश, सिरसी ने फिर से प्रस्तुत करने के लिए, विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट निर्णय को संशोधित किया, प्रदान की गई राशि को घटाकर उस पर ब्याज भी, जो, रुपए 14,68,239/- @18% से निविदा राशि का केवल 25% जो रुपए

3,71,564/- के बराबर है और उस पर ब्याज प्रतिशत घटाकर 9% कर दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा इसे उचित पाया गया।

विचार और निष्कर्ष

11. इस पृष्ठभूमि में हमें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए विद्वत सिविल न्यायाधीश द्वारा किए गए मध्यस्थता का पंचाट निर्णय का संशोधन कानून के भीतर उचित था?

12. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 और 37 के तहत मध्यस्थता पंचाट निर्णयों में हस्तक्षेप करने की गुंजाइश पर इस न्यायालय के स्पष्टीकरणों की जांच करना उपयोगी होगा।

13. विद्वत सिविल न्यायाधीश का निर्णय और आदेश दिनांक 22 अप्रैल 2010 को दिया गया था।

14. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34/37 के तहत शुरू की गई कार्यवाही में मध्यस्थता पंचाट निर्णय को संशोधित किया जा सकता है या नहीं, इस बारे में स्थिति अब एकीकृत नहीं है। अधिक विशेष रूप से, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 (4) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए; इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, जिसमें "रेडफर्न एंड हंटर ऑन इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन, 6 वें संस्करण" ग्रंथ में दर्ज कई निर्णयों में प्रतिपादित अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांत शामिल हैं, **भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण बनाम एम. हकीन और अन्य**³ में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि धारा 34 के तहत किसी भी न्यायालय को मध्यस्थता पंचाट निर्णय को संशोधित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा, जिसे धारा 34 के तहत निर्दिष्ट आधारों के साथ टकराव में दिया गया है, कानून में पूरी तरह से अस्थिर होगा। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि धारा 34 के तहत "एक पंचाट निर्णय को संशोधित करने" का कोई भी प्रयास "लक्ष्मण रेखा को पार करने" के बराबर होगा।

15. ठीक इसी मुद्दे पर हम इस न्यायालय द्वारा दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड बनाम नेविगेंट टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड⁴ में निम्नलिखित शब्दों में दी गई एक अन्य राय पर भी ध्यान दे सकते हैं:

"44. विधि में, जहां न्यायालय अधिकरण के बहुसंख्यक सदस्यों द्वारा पारित निर्णय को अपास्त करता है, वहां अंतर्निहित विवादों को एक उपयुक्त कार्यवाही में नए सिरे से तय करने की आवश्यकता होगी। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत, न्यायालय या तो दायर आपतियों को खारिज कर सकता है, और पंचाट निर्णय को बरकरार रख सकता है, या यदि उप-धारा (2) और (2-ए) में निहित आधार बनाए जाते हैं तो पंचाट निर्णय को अलग कर सकता है। मध्यस्थता निर्णय को संशोधित करने की कोई शक्ति नहीं है। मैकडरमोट इंटरनेशनल इंक. बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड [मैकडरमोट इंटरनेशनल इंक. बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड, (2006) 11 एससीसी 181] में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया: (एससीसी पृष्ठ 208, अनुच्छेद 52)

"52. 1996 का अधिनियम न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका के लिए प्रावधान करता है, केवल निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए मध्यस्थता पंचाट निर्णय की समीक्षा के लिए। न्यायालय के हस्तक्षेप की परिकल्पना केवल कुछ परिस्थितियों में की जाती है, जैसे मध्यस्थों द्वारा धोखाधड़ी या पक्षपात, प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन आदि के मामले में। न्यायालय मध्यस्थों की गलतियों को ठीक नहीं कर सकता है। यह केवल पक्षकारों को इच्छा होने पर फिर से मध्यस्थता शुरू करने के लिए स्वतंत्र छोड़ते हुए निर्णय को रद्द कर सकता है। इसलिए, प्रावधान की योजना का उद्देश्य न्यायालय की पर्यवेक्षी भूमिका को न्यूनतम स्तर पर रखना है और इसे उचित ठहराया जा सकता है क्योंकि समझौते के पक्ष मध्यस्थता का विकल्प चुनकर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बाहर करने के लिए एक सचेत निर्णय लेते हैं क्योंकि वे इसके द्वारा दी गई समीचीनता और अंतिमता को पसंद करते हैं।

(जोर दिया गया)

16. इस सिद्धांत को लार्सन एयर कंडीशनिंग और रिफ्रिजरेशन कंपनी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया में 2023 के अंत तक दोहराया गया है⁵ ।

17. हम इस प्रकार की मध्यस्थता कार्यवाही की चुनौतियों के निर्णय में विचार किए जाने वाले कुछ सिद्धांतों को देख सकते हैं। यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि

मध्यस्थता की कार्यवाही स्वयं न्यायालय के समक्ष न्यायिक कार्यवाही से तुलनीय नहीं है (डायना टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम क्रॉम्पटन ग्रीव्स लिमिटेड⁶) मध्यस्थ के दृष्टिकोण को आम तौर पर पक्षों के लिए बाध्यकारी माना जाता है जब तक कि इसे कुछ निर्दिष्ट आधारों पर अलग नहीं किया जाता है। उसी निर्णय में राय को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि "मध्यस्थता पर रसेल" में है, न्यायालय द्वारा निष्कर्षों के सार को देखने की आवश्यकता को दोहराया गया, न कि इसके रूप को, दोहराया गया और पंचाट निर्णय को निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से पढ़ने का दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, न कि जिसे "अनुचित शाब्दिक तरीके" के रूप में कहा जाता है। केवल यह आवश्यक है कि क्या पर्याप्त कारणों के कारण दिए गए कारण बोधगम्य हैं या नहीं, यह पंचाट निर्णय को बोधगम्य रूप से पठनीय बनाने के रास्ते में नहीं आ सकता है।

18. इस बात पर जोर देते हुए, यह दोहराया जाता है कि यदि मध्यस्थ द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक प्रशंसनीय दृष्टिकोण है, तो निर्दिष्ट आधारों पर कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है (कोंकण रेलवे कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम चिनाब पुल परियोजना⁷)।

19. यह भी कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि एक तकनीकी विशेषज्ञ द्वारा पारित पंचाट निर्णय की उसी तरीके से जांच नहीं की जाती है जैसे कानूनी रूप से प्रशिक्षित दिमाग द्वारा तैयार किया जाता है (दिल्ली एयरपोर्ट मेट्रो एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड⁸)

20. हम मध्यस्थ और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 के आधार पर धारा 34 में लाए गए संशोधन से पहले 18 फरवरी, 2003 को पारित एक निर्णय पर विचार कर रहे हैं। तैयार संदर्भ के उद्देश्य से संशोधित और असंशोधित प्रावधानों के प्रासंगिक भाग को निम्नानुसार निकाला गया है:-

"2015 के संशोधन से पहले।

34. मध्यस्थ निर्णय को अलग रखने के लिए आवेदन। -

(1) मध्यस्थता आदेश के विरुद्ध न्यायालय का सहारा केवल उपधारा (2) और उपधारा (3) के अनुसार ऐसे निर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा लिया जा सकता है।

(2) न्यायालय द्वारा मध्यस्थता के निर्णय को केवल तभी अपास्त किया जा सकता है जब-
....

(v) मध्यस्थता अधिकरण या मध्यस्थता प्रक्रिया का गठन पक्षकारों के करार के अनुसार नहीं था, जब तक कि ऐसा करार इस भाग के किसी उपबंध के विरुद्ध न हो जिससे पक्षकार अवमूल्यन न कर सकें, या ऐसे करार में असफल होना इस भाग के अनुरूप न हो; या

(ख) न्यायालय यह पाता है कि-

(i) विवाद का विषय कुछ समय के लिए लागू कानून के तहत मध्यस्थता द्वारा निपटान करने में सक्षम नहीं है, या

(ii) मध्यस्थता पंचाट निर्णय भारत की सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष में है।

स्पष्टीकरण- उपखंड (ii) की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना किसी संदेह से बचने के लिए एतद्वारा यह घोषित किया जाता है कि कोई निर्णय भारत की लोक नीति के विरुद्ध है यदि निर्णय देने का कार्य धोखाधड़ी या भ्रष्टाचार से प्रेरित या प्रभावित था या धारा 75 या धारा 81 का उल्लंघन था।

(जोर दिया गया)

2015 संशोधन के बाद।

34. मध्यस्थता निर्णय को अलग रखने के लिए आवेदन। - (1) मध्यस्थता निर्णय के विरुद्ध न्यायालय का सहारा केवल उपधारा (2) और उपधारा (3) के अनुसार ऐसे निर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा लिया जा सकता है।

(2) न्यायालय द्वारा मध्यस्थता निर्णय को केवल तभी अपास्त किया जा सकता है जब-

.....

(ख) न्यायालय यह पाता है कि-

(i) विवाद का विषय उस समय प्रवृत्त विधि के अधीन मध्यस्थता द्वारा समाधान करने में सक्षम नहीं है, या

(ii) मध्यस्थता निर्णय भारत की लोक नीति के विरुद्ध है।

[स्पष्टीकरण 1.-किसी भी संदेह से बचने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि एक पंचाट निर्णय भारत की सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष में है, केवल अगर,-

(i) पंचाट निर्णय का निर्माण धोखाधड़ी या भ्रष्टाचार से प्रेरित या प्रभावित था या धारा 75 या धारा 81 का उल्लंघन था; या

(ii) यह भारतीय कानून की मौलिक नीति का उल्लंघन है; या

(iii) यह नैतिकता या न्याय की सबसे बुनियादी धारणाओं के साथ संघर्ष में है।

स्पष्टीकरण 2. संदेह से बचने के लिए, यह परीक्षण कि क्या भारतीय विधि की मूल नीति का कोई उल्लंघन हुआ है, विवाद के गुणागुण पर पुनरीक्षण को बाध्य नहीं करेगा। [(2-क) अन्तरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थता से भिन्न माध्यस्थता से उद्भूत मध्यस्थता पंचाट को भी न्यायालय द्वारा अपास्त किया जा सकता है, यदि न्यायालय यह पाता है कि पंचाट, पंचाट के सामने प्रकट होने वाली पेटेंट अवैधता द्वारा दूषित किया गया है:

बशर्ते कि कोई निर्णय केवल विधि के त्रुटिपूर्ण अनुप्रयोग के आधार पर या साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन द्वारा अपास्त नहीं किया जाएगा।]"

21. जहां तक इस तरह के संशोधन से पहले कानून की स्थिति का संबंध है, स्थिति इस न्यायालय द्वारा **डीडीए बनाम आर. एस. शर्मा**⁹ में निहित है, जहां आधार जिसके द्वारा अदालतें मध्यस्थता पंचाट निर्णय के खिलाफ हस्तक्षेप कर सकती हैं, सूचीबद्ध किए गए थे।

22. **एसोसिएट बिल्डर्स बनाम डी. डी. ए.**¹⁰ में इस न्यायालय के अवलोकन भी उल्लेखनीय हैं। यह अभिनिर्धारित किया गया था:

"15. यह धारा 5 के संयोजन से यह स्पष्ट करती है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के भाग I द्वारा शासित मध्यस्थता निर्णय को धारा 34 (2) और (3) के

अधीन उल्लिखित आधारों पर ही अपास्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। खंड 5 इस प्रकार है:

"5. न्यायिक हस्तक्षेप का विस्तार- तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस भाग द्वारा शासित मामलों में, कोई न्यायिक प्राधिकारी हस्तक्षेप नहीं करेगा सिवाय इसके कि इस भाग में इस प्रकार का उपबंध किया गया है।

16. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि 1996 का अधिनियम 1940 के मध्यस्थता अधिनियम के स्थान पर एक ऐसी मध्यस्थता प्रक्रिया प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था जो निष्पक्ष, कुशल और मध्यस्थता की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो; यह भी प्रदान करने के लिए कि न्यायाधिकरण एक मध्यस्थता निर्णय के लिए कारण देता है; यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्यायाधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर रहता है; और मध्यस्थता प्रक्रिया में न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिकाओं को कम करने के लिए।

17. यह देखा जाएगा कि धारा 34 की उपधारा (2) (क) में निहित आधारों में से कोई भी मध्यस्थता निर्णय द्वारा दिए गए निर्णय के गुणागुण से संबंधित नहीं है। यह केवल तभी होता है जब हम भारत की सार्वजनिक नीति के साथ टकराव में होने के कारण निर्णय पर आते हैं कि मध्यस्थता पंचाट निर्णय के गुणों को कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों में देखा जाना चाहिए।

(जोर दिया गया)

23. जैसा कि ऊपर निकाले गए उपबंधों से यह स्पष्ट है कि संशोधन अधिनियम से पूर्व, न्यायालय के लिए यह जांच करने के लिए खुला था कि क्या यह (क) भारत की लोक नीति; (ख) धोखाधड़ी से प्रेरित या प्रभावित; (ग) भ्रष्टाचार; और (घ) मध्यस्थता और सुलहअधिनियम की धारा 75 और 81 के उपबंधों के किसी उल्लंघन के विरुद्ध था।

24. तत्काल मामले में, एकमात्र प्रावधान जिसके तहत पंचाट निर्णय पर हमला किया जा सकता था, वह यह था कि यह भारत की सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष में रहा था। इस अवधारणा पर इस न्यायालय द्वारा **एसोसिएट बिल्डर्स (उपर्युक्त) सांगयोंग इंजीनियरिंग एंड**

कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण¹¹ में निम्नलिखित शब्दों में विस्तृत रूप से विचार किया गया है:-

25. एसोसिएट बिल्डर्स (उपर्युक्त) में न्यायालय ने कहा-

"19. जब मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 34 (2) (ख) (ii) में अंतर्विष्ट "भारत की लोक नीति" पद का अर्थ निकालने की बात आई तो ओ. एन. जी. सी. लिमिटेड बनाम साँ पाइप्स लिमिटेड [(2003) 5 एस. सी. सी. 705: ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2629] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया: (एस. सी. सी. पीपी. 727-28 और 744-45, अनुच्छेद 31 और 74)

"31. इसलिए, हमारे विचार में, संदर्भ में धारा 34 में प्रयुक्त वाक्यांश 'भारत की सार्वजनिक नीति' को व्यापक अर्थ दिए जाने की आवश्यकता है। यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक नीति की अवधारणा कुछ ऐसे मामलों को इंगित करती है जो सार्वजनिक भलाई और सार्वजनिक हित से संबंधित हैं। जो सार्वजनिक भलाई के लिए या सार्वजनिक हित के लिए है या जो सार्वजनिक भलाई या सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक या हानिकारक होगा, वह समय-समय पर भिन्न होता रहा है। हालाँकि, जो पंचाट निर्णय , इसके बावजूद, वैधानिक प्रावधानों का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करता है, उसे लोक हित में नहीं कहा जा सकता है। इस तरह के निर्णय/निर्णय/निर्णय से न्याय के प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। इसलिए, हमारे विचार में रेनुसागर मामले में 'लोक नीति' शब्द को दिए गए संकीर्ण अर्थ के अलावा [रेनुसागर पावर कंपनी लिमिटेड बनाम जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी, 1994 पूरक (1) एससीसी 644] यह अभिनिर्धारित किया जाना आवश्यक है कि पंचाट निर्णय को अलग रखा जा सकता है यदि यह स्पष्ट रूप से अवैध है। परिणाम होगा-पंचाट निर्णय को अलग रखा जा सकता है यदि यह इसके विपरीत है:

(क) भारतीय कानून की मौलिक नीति; या

(ख) भारत के हित; या

(ग) न्याय या नैतिकता, या

(घ) इसके अलावा, अगर यह स्पष्ट रूप से अवैध है।

अवैधता मामले की जड़ तक जानी चाहिए और यदि अवैधता तुच्छ प्रकृति की है तो यह नहीं माना जा सकता है कि पंचाट निर्णय सार्वजनिक नीति के खिलाफ है। पंचाट निर्णय को रद्द भी किया जा सकता है यदि यह इतना अनुचित और अनुचित है कि यह न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देता है। इस तरह का पंचाट निर्णय सार्वजनिक नीति के खिलाफ है और इसे अमान्य घोषित करने की आवश्यकता है।

(जोर दिया गया)

26. **सांगर्योग इंजीनियरिंग** (उपरोक्त) ने **एसोसिएट बिल्डर्स** (उपरोक्त) की टिप्पणियों का पालन किया विशेष रूप से भारतीय पंचाट निर्णयों के संदर्भ में इसकी सीमा को कुशलता से समाहित करने के लिए, हम केवल अनुच्छेद 37 का उल्लेख कर सकते हैं जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है:-

"37. जहां तक भारत में किए गए घरेलू पंचाट निर्णयों का संबंध है, एक अतिरिक्त आधार अब संशोधन अधिनियम, 2015 द्वारा धारा 34 में जोड़ी गई उप-धारा (2-क) के तहत उपलब्ध है। यहां, पंचाट निर्णय के चेहरे पर पेटेंट अवैधता दिखाई देनी चाहिए, जो इस तरह की अवैधता को संदर्भित करती है जो मामले की जड़ तक जाती है, लेकिन जो कानून के केवल गलत अनुप्रयोग के बराबर नहीं है। संक्षेप में, जिसे "भारतीय कानून की मौलिक नीति" में शामिल नहीं किया गया है, अर्थात्, सार्वजनिक नीति या सार्वजनिक हित से जुड़े कानून का उल्लंघन, जब पेटेंट अवैधता के आधार पर किसी पंचाट निर्णय को अलग करने की बात आती है, तो पिछले दरवाजे से नहीं लाया जा सकता है।

27. **एसोसिएट बिल्डर्स** (उपरोक्त) में स्थिति को हाल ही में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था जैसा कि **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम श्री गणेश पेट्रोलियम**¹² द्वारा नीचे दर्ज किया गया है।

"42. एसोसिएट बिल्डर्स में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एक पंचाट निर्णय को निम्नलिखित परिस्थितियों में, अन्य बातों के साथ-साथ, भारत की सार्वजनिक नीति के विरुद्ध कहा जा सकता है:

42.1. जब कोई पंचाट निर्णय, अपने चेहरे पर, एक वैधानिक प्रावधान के पेटेंट उल्लंघन में है।

42.2. जब मध्यस्थ/मध्यस्थ न्यायाधिकरण विवाद का निर्णय लेने में न्यायिक दृष्टिकोण अपनाने में विफल रहा हो।

42.3. जब कोई पंचाट निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है।

42.4. जब कोई पंचाट निर्णय अनुचित या विकृत हो।

42.5. जब कोई पंचाट निर्णय स्पष्ट रूप से अवैध है, जिसमें भारत के किसी मूल कानून के पेटेंट उल्लंघन या 1996 के अधिनियम के पेटेंट उल्लंघन में एक पंचाट निर्णय शामिल होगा।

42.6. जब कोई पंचाट निर्णय भारत के हित के विपरीत, या न्याय या नैतिकता के खिलाफ होता है, तो इस अर्थ में कि यह न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देता है।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम धारा 34 के तहत निर्णय पारित

28. इस न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण में, विद्वत सिविल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश का अवलोकन, कानून के पाठ के प्रति निष्ठा को नहीं दर्शाता है। कहीं भी यह समझाया नहीं गया है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 के तहत किस आधार (आधारों) के तहत न्यायालय को हस्तक्षेप करने का पर्याप्त कारण मिला। वास्तव में, इसके बिल्कुल विपरीत, न्यायालय ने मामले की पुनः सराहना की, और साक्ष्य के अपने दृष्टिकोण पर, आदेश को संशोधित किया।

29. जैसा कि उपरोक्त निकाले गए निर्णय से पता चलता है, पंचाट निर्णय के गुणों को केवल तभी देखा जाना चाहिए, जब पंचाट निर्णय को भारत की सार्वजनिक नीति के विपरीत दिखाया जाए। विद्वत सिविल न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थता निर्णय को संशोधित करने के लिए अभिलिखित कारण, जैसा कि उसके अवलोकन से परिलक्षित होता है, निर्णय के पूर्व खंड में अभिलिखित किए गए हैं। उन कारणों में से कोई भी पंचाट निर्णय के भारत की

सार्वजनिक नीति के विपरीत होने का संकेत नहीं देता है, जो न्यायालय को पंचाट निर्णय के गुण-दोष पर गौर करने में सक्षम बनाएगा।

30. हमने मध्यस्थ द्वारा पारित निर्णय का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है जिसमें उसने न केवल अभिलेख की सामग्रियों को उनकी संपूर्णता में संदर्भित किया है और उन पर विचार किया है, बल्कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कारण भी दिए हैं, या तो अस्वीकार करना, स्वीकार करना या कम करना दावेदार-अपीलकर्ता द्वारा निर्धारित दावा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि मध्यस्थता की कार्यवाही के दौरान किसी भी पक्ष ने मध्यस्थ द्वारा विवाद का निर्णय लेने पर कोई आपत्ति नहीं जताई, चाहे वह पक्षपात सहित किसी भी आधार पर हो। प्रत्येक दावे पर अलग से विचार किया जाता है और उनसे निपटा जाता है।

31. हम पाते हैं कि मध्यस्थ द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक प्रशंसनीय दृष्टिकोण है और इसे न्यायालय द्वारा अपने लिए प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता था।

32. मध्यस्थता और सुलहअधिनियम की धारा 34 के तहत न्यायालय द्वारा दिए गए कारण, हमारी राय में, पक्षों के बीच विवाद के लिए पूरी तरह से बाहरी हैं और रिकॉर्ड से उत्पन्न नहीं होते हैं। वास्तव में, वे परस्पर विरोधी हैं।

32.1 दावेदार-अपीलार्थी के पक्ष में निविदा राशि का 25% (विद्वत सिविल न्यायाधीश, सिरसी के निर्णय के कुछ भागों में "निविदा राशि से अधिक" के रूप में गलत तरीके से अभिलिखित) प्रदान करते हुए, न्यायालय ने वास्तव में स्वीकार किया है कि दावेदार-अपीलार्थी ने अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन नहीं किया था। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने साइट ड्राइंग और सामग्री की आपूर्ति को सौंपने में देरी के दावेदार के तर्क को स्वीकार कर लिया है। न्यायालय ने रेखाचित्रों में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए यह अवलोकन करते हुए एक दुस्साहस का सहारा लिया कि रेखाचित्रों में परिवर्तन बीम के आयाम में "केवल मामूली" थे, जैसा कि हम पाते हैं कि न्यायालय ने इसे "अनुबंध के निष्पादन में आवश्यक के रूप में देखा गया" दर्ज करके खुद का खंडन किया है। हमारे सुविचारित विचार में न्यायालय का यह कहने का कोई कार्य नहीं था कि दावेदार राशि का दावा संबंधित अभियंता या उसकी संपत्ति की जेब से कर रहा है।

“.... चाहे दावेदार ऐसी राशि का दावा कर रहा हो जो संबंधित इंजीनियरों की जेब से है या उसकी संपत्ति से है, इतनी राशि सरकारी खजाने से दी जानी चाहिए, यह करदाता पर भारी पड़ता है, जिस पर अदालत को विचार करना होगा....”

32.2 हमारी सुविचारित राय में, पंचाट निर्णय में हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराते हुए, आगे की टिप्पणियां पूरी तरह से निंदनीय हैं:-

“.... मान लीजिए कि मध्यस्थ जो सेवानिवृत्ति के बाद सेवानिवृत्त इंजीनियर है, विभाग पर कोई होल्डिंग नहीं होगी, जब दावेदार इतनी राशि का लाभ उठाने जा रहा है तो मध्यस्थ को लाभ होगा....”

32.3 न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए कारण निर्दिष्ट करने में अपने व्यक्तिगत ज्ञान को आरोपित किया:

“... इस मामले में भी यदि मध्यस्थ की रिपोर्ट को स्वीकार किया जाता है, तो यह विभाग पर नहीं, बल्कि सरकारी खजाने पर भारी बोझ है....”

32.4 न्यायालय द्वारा उस निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए दिया गया तर्क, जो हमारे विचार में, इसके तुरंत बाद निकाला गया है, बेतुका है: -

“... यह सामान्य ज्ञान और सामान्य अवलोकन है, जब भी किसी ठेकेदार को निर्माण करने के लिए काम सौंपा जाता है, तो वे क्या करते हैं, वे नींव रखने के लिए खुदाई शुरू करते हैं। यह दूसरे प्रतिद्वंद्वी का मामला मूल स्थान पर खुदाई करने या आवासीय घर के निर्माण के लिए कोई नींव रखने का नहीं है। इसलिए, ऐसी परिस्थितियों में प्रतिद्वंद्वी संख्या 2 द्वारा की गई कथित हार केवल उनकी कल्पना पर है।”

32.5 क्योंकि राजकोष पर भार पर विचार करना न्यायालय का कार्य नहीं है। न्यायालय द्वारा केवल यह देखने की आवश्यकता है कि क्या संविदाकारी पक्ष धारा 34 के अधीन विनिर्दिष्ट आधारों के आलोक में न्यायालय की एकमात्र पर्यवेक्षी अधिकारिता के साथ शर्तों के उल्लंघन पर विचार करने के लिए सहमत हुए हैं।

32.6 हमारे विचार से, न्यायालय ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि नागरिक अनुबंध प्रकृति में समग्र था जो कार्यालय और निवास दोनों के निर्माण को एक साथ

अनुबंधित कर रहा है। इन परिस्थितियों में, ठेकेदार परियोजना के हिस्से का काम शुरू नहीं कर सकता था जब पूरी स्थल और ड्राइंग उसे नहीं सौंपी गई थी। पक्षों के अन्यथा सहमत होने के अभाव में, काम शुरू नहीं हो सकता था। इसलिए, ठेकेदार के लिए अनुबंध के एक भाग के लिए काम शुरू करने के लिए न्यायालय का अवलोकन, प्रकृति में सलाहकारी, अनुचित और अनावश्यक है, वास्तव में विकृत है।

32.7 दूसरा अवलोकन कि ठेकेदार की ओर से काम पूरा करने या काम में तेजी लाने में देरी हुई थी, रिकॉर्ड में परिलक्षित नहीं होता है। वे केवल अनुमानों से कम नहीं हैं। यह मध्यस्थता खंड के आह्वान की अनुपस्थिति या ठेकेदार के खिलाफ प्रतिवादी की ओर से उसके तहत कार्यवाही की शुरुआत के साथ-साथ मध्यस्थ द्वारा निर्णय के लिए कोई जवाबी दावा नहीं करने के मद्देनजर अधिक है।

32.8 कानूनी स्थिति के लिए लेखांकन, न्यायालय सर्वोत्तम रूप से निर्णय को अपास्त कर सकता था और उसे संशोधित नहीं कर सकता था।

32.9 हम विद्वत मध्यस्थ को भी नोटिस करते हैं, जिसने दावेदार-अपीलकर्ता के इस तर्क को स्वीकार कर लिया है कि ड्राइंग की आपूर्ति में देरी हुई थी, जो बदले में स्टील और ऐसी अन्य आवश्यकताओं के लिए आदेश देने में देरी का कारण बनी। सिविल न्यायाधीश ने केवल “ प्रदर्श आर 38 से 95 के संदर्भ में इससे असहमति जताई थी जो शीघ्र आपूर्ति दिखा रहा है। किसी तरह की चर्चा नहीं हो रही है। एक और उदाहरण उल्लेखनीय है। यह देखा गया कि अगर किसी अन्य भवन का निर्माण किया जाना है तो श्रम की आलस्य का सवाल ही नहीं उठता है, और इसलिए, इस तरह के दावे का भुगतान नहीं किया जा सकता है। यह न्यायालय द्वारा मध्यस्थ के स्थान पर अपने दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने का एक स्पष्ट उदाहरण है, जो एक अनुमेय अभ्यास नहीं है, और धारा 34 के तहत अधिकार क्षेत्र से पूरी तरह से अलग है।

33. इस प्रकार, विद्वत सिविल न्यायाधीश, सिरसी द्वारा मध्यस्थता निर्णय का संशोधन, जांच के दायरे में नहीं आता है, और इसे अलग रखा जाना चाहिए।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 37 के तहत निर्णय।

34. आगे बढ़ते हुए, हम अब हमारे सामने आरोपित निर्णय पर विचार करते हैं, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, जो, अधिनियम की धारा 37 के अधिकार क्षेत्र के तहत इस तरह के संशोधन को बरकरार रखने वाले उच्च न्यायालय का आदेश।

35. इस न्यायालय ने **एमएमटीसी लिमिटेड बनाम वेदांत लिमिटेड**¹³

"14 में यह मत व्यक्त किया है। जहां तक धारा 37 के अनुसार धारा 34 के तहत किए गए आदेश में हस्तक्षेप का संबंध है, यह विवादित नहीं है कि धारा 37 के तहत इस तरह का हस्तक्षेप धारा 34 के तहत निर्धारित प्रतिबंधों से परे नहीं जा सकता है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय पंचाट निर्णय के गुण-दोष का स्वतंत्र मूल्यांकन नहीं कर सकता है, और उसे केवल यह सुनिश्चित करना चाहिए कि धारा 34 के तहत न्यायालय द्वारा शक्ति का प्रयोग प्रावधान के दायरे से अधिक नहीं है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि धारा 34 के तहत न्यायालय द्वारा और धारा 37 के तहत अपील में न्यायालय द्वारा मध्यस्थता पंचाट निर्णय की पुष्टि की गई है, तो इस न्यायालय को इस तरह के समवर्ती निष्कर्षों को बाधित करने के लिए बेहद सतर्क और धीमा होना चाहिए।

(जोर दिया गया)

36. इस विचार को **यूएचएल पावर कंपनी लिमिटेड बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य**¹⁴ में तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया है। धारा 37 के संबंध में, इस न्यायालय ने कहा:-

"16. जैसा कि यह है, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत अदालतों को दिया गया अधिकार क्षेत्र काफी संकीर्ण है, जब मध्यस्थता अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील के दायरे की बात आती है, तो एक आदेश की जांच करने में एक अपीलीय न्यायालय का अधिकार क्षेत्र, एक पंचाट निर्णय को अलग करने या अस्वीकार करने से इनकार करना, सभी अधिक सीमित है।

37. इस न्यायालय ने इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया है कि, उपरोक्त रूप में हमारी चर्चा के परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 के तहत निर्णय और आदेश न्यायिक जांच में नहीं बैठते हैं, **एमएमटीसी लिमिटेड**

में उपर्युक्त होल्डिंग को देखते हुए विवादित निर्णय के स्वतंत्र मूल्यांकन की आवश्यकता नहीं हो सकती है। हालाँकि, हम उसी की जाँच करना जारी रखते हैं।

38. हम यह भी देख सकते हैं कि धारा 34 और 37 जो के तहत शक्ति के प्रयोग की सीमित प्रकृति, एक मध्यस्थता पंचाट निर्णय के साथ हस्तक्षेप, स्पष्ट रूप से विधायी इरादे से प्रदर्शित किया जाता है। 1940 के मध्यस्थता अधिनियम में एक प्रावधान (धारा 15) था जो न्यायालय को पंचाट निर्णयों में हस्तक्षेप करने की अनुमति देता था, हालाँकि, वर्तमान विधान के तहत, उस प्रावधान को हटा दिया गया है।¹⁵

39. ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 34 के तहत विद्वत सिविल न्यायाधीश के समान विद्वत एकल न्यायाधीश ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 37 की रूपरेखा से खुद को संबंधित नहीं किया है। विवादित निर्णय एक अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की तरह है, जिसके लिए कार्रवाई के पाठ्यक्रम के रूप में गुण-दोष की पुनः जांच की जा सकती है।

40. हम पाते हैं कि न्यायालय ने इस निर्णय को विकृत और सार्वजनिक नीति के विपरीत माना है। इस तरह के निष्कर्ष का आधार ठेकेदार की ओर से काम को पूरा करने में देरी है जिसे "टाला जा सकता था"। महत्वपूर्ण रूप से, जैसा कि हमने पहले देखा है कि इस तरह की खोज रिकॉर्ड पर किसी भी सामग्री द्वारा समर्थित नहीं है।

41. ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने 1989-90 और 1992 के वर्षों के बीच लागत वृद्धि की 100% की फैक्टरिंग को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था। लेकिन फिर समान रूप से, अनुबंध मूल्य के 25% तक एकमुश्त वृद्धि देने का कोई औचित्य नहीं है। खैर, यह पक्षकारों के लिए निर्णय को संशोधित करने का एक कारण नहीं हो सकता है जो नियमों और शर्तों द्वारा शासित हैं और मूल्य वृद्धि याचिकाकर्ता द्वारा ठोस और विश्वसनीय सामग्री के आधार पर उचित थी जैसा कि मध्यस्थ द्वारा आंशिक रूप से स्वीकार करने और/या अस्वीकार करने में गिना गया था।

42. हमारी सुविचारित राय में, न्यायालय ने पंचाट निर्णय के संशोधन की पुष्टि करते हुए वही गलती की जो न्यायालय ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 के तहत की थी।

धारा 37 के तहत न्यायालय के पास केवल तीन विकल्प थे:-

(क) मध्यस्थ के निर्णय की पुष्टि करना;

(ख) धारा 34 के तहत संशोधित के रूप में पंचाट निर्णय को अलग करना; और

(ग) धारा 34 और 37 के तहत आवेदन(ओं) को अस्वीकार करना।

43. विद्वत एकल न्यायाधीश ने कुछ दावों (विशेष रूप से दावे 3 और 7) के संबंध में विद्वत मध्यस्थ द्वारा अपनाए गए तर्क की जांच की है और यह अभिनिर्धारित किया है कि लागत में वृद्धि के लिए दावे को अनुमति देना संतोषजनक सामग्री के बिना रिकॉर्ड पर रखा गया था और "विकृत और सार्वजनिक नीति के विपरीत" है। हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधीश की ओर से इस तरह की रोक बिना कारण बताए है। इस पर चर्चा नहीं की गई है कि इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश के सामने क्या सबूत थे। यह निश्चित रूप से, पूरी तरह से इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की वैधानिक योजना द्वारा चित्रित दायरे के संदर्भ के बिना है।

44. जे. जी. इंजीनियर्स (पी) लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया¹⁶ और विशेष रूप से इसके अनुच्छेद 27 को संदर्भित करने के बाद, यह माना गया है कि विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट निर्णय "स्पष्ट रूप से अवैध, अनुचित, सार्वजनिक नीति के विपरीत" है। सार्वजनिक नीति के सामने विद्वान मध्यस्थ की पकड़ कैसे उड़ती है, इसका कोई कारण सामने नहीं आता है।

ब्याज पर

45. ब्याज के मुद्दे पर, हम देखते हैं कि मध्यस्थ ने ब्याज प्रदान किया है @18% प्रति वर्ष की दर जो लागू है दिनांक 09 मार्च 1994 से जो घटकर 9% रह गया। लेन-देन प्रकृति में वाणिज्यिक होने के कारण, हम इस बात का कोई कारण नहीं देखते हैं कि दावेदार मध्यस्थ द्वारा निर्धारित दर के संदर्भ में ब्याज का हकदार क्यों नहीं हो सकता है जिसमें पूर्व-मध्यस्थता, लटकन और भविष्य की अवधि शामिल है। हम इस न्यायालय को हैदर कंसल्टिंग (यूके) लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य¹⁷ में एस. ए. बोबडे, न्यायमूर्ति (जैसा कि उनका प्रभुता तब था) बहुमत के लिए निम्नानुसार बोल रहे थे:

"4. उपधारा (7) के खंड (क) में यह उपबंध है कि जहां धन के संदाय के लिए निर्णय किया जाता है, वहां मध्यस्थता अधिकरण उस राशि का ब्याज शामिल कर सकता है जिसके लिए निर्णय किया गया है। स्पष्ट शब्दों में, यह उपबंध मध्यस्थता अधिकरण को धन के संदाय के लिए निर्णय करते समय, उस राशि में ब्याज को सम्मिलित करने की शक्ति प्रदान करता है जिसके लिए निर्णय धन के संपूर्ण या किसी भाग पर किया जाता है और संपूर्ण या अवधि के किसी भाग के लिए उस तारीख के बीच की पूरी पूर्व-पंचाट निर्णय अवधि के लिए जिस पर कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ और उस तारीख के लिए जिस पर निर्णय किया गया है। अधिनियम की धारा 31 की उपधारा (7) के खंड (क) में आने वाले महत्वपूर्ण शब्द "वह राशि है जिसके लिए पंचाट निर्णय दिया जाता है।" एक सादे पठन पर, यह अभिव्यक्ति उस भुगतान के लिए कुल राशि या राशि को संदर्भित करती है जिसके लिए पंचाट निर्णय दिया जाता है। संसद ने "राशि" शब्द में "मूलधन" जैसी योग्यता नहीं जोड़ी है, और इसलिए, यहाँ "राशि" शब्द का अर्थ केवल "एक विशेष राशि" है। धारा 31 (7) में इस विशेष राशि में कार्रवाई के कारण की तारीख से पंचाट निर्णय की तारीख तक का ब्याज शामिल हो सकता है।

.....

7. इस प्रकार, जब एक संज्ञा के रूप में उपयोग किया जाता है, जैसा कि इस प्रावधान में उपयोग किया गया है, तो "योग" शब्द का अर्थ केवल "धन की राशि" है; इसमें जो कुछ भी शामिल हो सकता है-"मूलधन" और "ब्याज" या दोनों में से एक। एक बार जब "योग" शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाता है, तो वही अर्थ अधिनियम की धारा 31 की उपधारा (7) के खंड (ख) में शब्द के साथ जोड़ा जाना चाहिए, जहां यह प्रावधान है कि एक मध्यस्थ पंचाट निर्णय द्वारा भुगतान करने के लिए निर्देशित राशि पंचाट निर्णय की तारीख से भुगतान की तारीख यानी i.e. तक "... ब्याज ले जाएगी"। पोस्ट पंचाट निर्णय । दूसरे शब्दों में, अधिनियम की धारा 31 की उपधारा (7) के खंड (ख) में यह निर्देश दिया गया है कि "राशि", जिसे पंचाट निर्णय द्वारा भुगतान करने के लिए निर्देशित किया जाता है, चाहे वह ब्याज सहित हो या ब्याज से अलग, पंचाट निर्णय के बाद की अवधि के लिए अठारह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज वहन करेगी, जब तक कि अन्यथा आदेश न दिया जाए।

...

9. इस प्रावधान को लागू करने का उद्देश्य स्पष्ट है, अर्थात्, दी गई राशि के शीघ्र भुगतान को प्रोत्साहित करना और सामान्य देरी को हतोत्साहित करना, जो उसी तरीके से पंचाट निर्णय के निष्पादन के साथ होती है जैसे कि यह अधिनियम की धारा 36 के तहत न्यायालय की डिक्री थी।

(जोर दिया गया)

46. इस न्यायालय की उपर्युक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि दावेदार-अपीलकर्ता ब्याज का हकदार है। हम पाते हैं कि विद्वान मध्यस्थ, जैसा कि अब तक देखा गया है, ने 18% ब्याज प्रदान किया है और इसे न्यायालयों द्वारा बिना किसी कानूनी आधार के नीचे 9% तक कम कर दिया गया है। अनुच्छेद 142 के तहत हमारी शक्तियों के प्रयोग में, हम इसे उचित मानते हैं, पर्याप्त न्याय सुनिश्चित करने के लिए, पक्षों के बीच, ब्याज @9% प्रति वर्ष पंचाट निर्णय लटकन और भविष्य की तारीख से भुगतान की तारीख तक।

निष्कर्ष

47. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 और धारा 37 दोनों के अच्छी तरह से निर्धारित मापदंडों और रूपांकनों के अनुपालन के अभाव में, अनुच्छेद 1 (उपर्युक्त) में निर्दिष्ट आक्षेपित निर्णयों को अलग करने की आवश्यकता है। नतीजतन, विद्वान मध्यस्थ का दिनांक 18 फरवरी 2003 का पंचाट निर्णय बहाल कर दिया गया है, क्योंकि कोई भी चुनौती विफल हो गई है।

48. कर्नाटक राज्य को शीघ्रता से राशि का भुगतान करने के निर्देश के साथ अपील की अनुमति दी गई है। कोई खर्च नहीं।

शीर्ष टिप्पणियाँ अंकित ज्ञान द्वारा तैयार की गईं।

मामले का परिणाम: अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद (मदन मोहन प्रिय) पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।